AMOGHVARTA

ISSN : 2583-3189

संविधान के सिद्धांत व मूल्य एवं इसके वर्त्तमान संदर्भ

ORIGINAL ARTICLE

Author
डॉ. सरिता कुमारी
सहायक प्राध्यापिका
स्नातकोत्तर राजनीति विज्ञान विभाग
रांची विश्वविद्यालय, रांची, झारखण्ड, भारत

शोध सार

भारत अपनी स्वतंत्रता के पचहत्तर वर्ष पूरा कर चुका है। इन वर्षों में भारतीय संविधानिक व्यवस्था, राजनीतिक प्रक्रिया तथा विकसित होने वाली प्रक्रिया अपने आप में महत्वपूर्ण रही है। अनेक अन्य नव स्वतंत्र तथा नव उदित विकासशील देशों की भांति स्वतंत्र भारत की राजनीतिक व्यवस्था तथा प्रशासन, सामाजिक–आर्थिक विकास व परिवर्तन के साधन थे। भारत में विकसित पश्चिमी देशों के विपरीत लोकतंत्र का विकास तथा चलन एक विशेष सामाजिक–आर्थिक परिवेश में और साथ ही उसे बदलने के उसे संदर्भ में हो रहा है। भारत मे अपनायी गयी सांविधानिक तथा प्रशासनिक संस्थाओं, प्रक्रियाओं, अपनाई गयी नीतियों तथा नियोजन आदि का विश्लेषण मात्र संस्थाओं तथा सांविधानिक व्यवस्थाओं के अध्ययन या मूल्यांकन से नही हो सकता। इसके लिए भारतीय राजनीतिक व्यवस्था तथा प्रणाली का वर्णन और मूल्यांकन सामाजिक–आर्थिक ढांचे तथा विकास और परिवर्तन के परिवेश में किया जाना चाहिए।

मुख्य शब्द

संविधान, संसदीय लोकतंत्र, उदारीकरण, विषमतायें, विकास एवं सामजस्य, संगठित राष्ट्र.

देश की अतीत की नींव पर ही संविधानों के प्रसाद खड़े होते है। जब 1946 और 1949 के बीच स्वाधीन भारत का संविधान बनाने के लिए, भारतवासी अपनी संविधान सभा में एकत्रित हुए तो उनके पीछे एक महान सभ्यता और गौरवमयी संस्कृति तथा स्वाधीनता की लड़ाई का लम्बा इतिहास था और उससे भी अधिक महान और गौरवपूर्ण भविष्य के निर्माण की आकांक्षा थी। अतः संविधान सभा ने भारत के संविधान के द्वारा गत हजारों वर्षो की संस्कृति में पनपे सामाजिक–सांस्कृतिक आदर्शो–आस्थाओं को तथा वर्तमान राजनीतिक –आर्थिक जीवन की अनेक आशाओं–आकांक्षाओं को वाणी देने का प्रयास किया। भारतीय संविधान का सरोकार मूलतः दो मामलों से है:

न्याय: सामाजिक, आार्थिक और राजनीतिक तथा व्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार। हमारी राजनीतिक व्यवस्था के भी दो उद्देश्य है:

1. राजनीतिक और आर्थिक लोकतंत्र की स्थापना और दूसरा प्रतिष्ठा और अवसर की समता विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता' के साथ व्यक्ति की गरिमा को सुनिश्चित करना। अतः संविधान इस प्रकार बनाया गया है कि इन दोनों उद्देश्यों का बिल्कुल स्पष्ट निरूपण हो जाए। यह संविधान की योजना थी कि आर्थिक और राजनीतिक लोकतंत्र को एक ऐसा लक्ष्य माना जाए जिस तक हमें पहुंचना है और व्यक्ति की स्वतंत्रताओं को एकदम एक वर्तमान यथार्थ। (न्यायमूर्ति एम. हिदायतुल्ला)

भारतीय संविधान के मूल सिद्धांत उसकी प्रस्तावना, तथा इसके तीसरे व चौथे भाग में विशेष रूप से मूर्त हुए है।

संविधान की प्रस्तावना

हम भारत के लोग.....।

यह सम्पूर्ण संविधान का सार है, दर्शन है। संविधान के सभी उपबन्ध प्रस्तावना में निहित भावनाओं से स्फूर्ति ग्रहण करते है। प्रस्तावना में जिन तथ्यों, सिद्धांतो तथा आदर्शो का निरूपण हुआ है, वे संविधान में विद्यमान है। वस्तुतः प्रस्तावना के आधार पर पूरे संविधान का अध्ययन ही नहीं, अपितु पुनर्निर्माण तक किया जा सकता है। प्रस्तावना की शब्दावली में अनेक शब्द और पद ऐसे हैं जिनमें प्राच्य या पाश्चात्य सभी परपंराओं के सर्वश्रेष्ठ तत्वों का निचोड़ है और जो प्रयोग की दृष्टि से सार्वभौम है– उनकी चाहे किसी भी दृष्टि से व्याख्या की जाए। प्रस्तावना पर आधुनिक युग की तीन महान क्रांतियों का प्रभाव पड़ा है– फ्रांसीसी, अमेरिकी और रूसी। फ्रांसीसी क्रांति में स्वतंत्रता, समानता और बंधुता पर जोर दिया था, अमेरिकी क्रांति में राजनीतिक स्वतंत्रता तथा व्यक्ति–स्वातंत्रय पर और रूसी क्रांति में आर्थिक समानता पर। भारतीय क्रांति के सूत्रधारो ने आरंभ से ही इन तीनों में समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया।

प्रभुत्ता और एकता का अर्थ

भारत की प्रभुत्ता अन्ततः जनता में निहित है। संविधान जनता के प्राधिकार पर आधारित है। सरकार अथवा राजसत्ता के विभिन्न अंगों की शक्तियां जनता द्वारा प्रदत्त है। ''हम भारत के लोग'' पदावली में एक और भी अर्थ निहित है वह यह कि हम भारत के लोग है, राज्यों के नहीं और भारत के लोग एक है। संविधान का निर्माण राज्यो ने अथवा अनेक राज्यों के लोगों ने नहीं किया है, बल्कि समूचे भारत के लोगो ने अपनी सामूहिक क्षमता से किया है इसलिए सांविधानिक दृष्टि से न कोई राज्य अथवा राज्य–समूह हमारे संविधान का अन्त कर सकता है और न वह संविधान द्वारा निर्मित संघ से बाहर जा सकता है। भारतीय संविधान ने पहले से ही यह स्पष्ट कर दिया है कि भारतीय संघ अविनाश है और राज्यों को संघ से अलग हो जाने का कोई अधिकार नहीं है। संविधान के भाग 1, अनुच्छेद–4, 'संघ और उसका राज्य क्षेत्र' में स्पष्ट किया गया है कि संसद विधि द्वारा संघ में नए राज्यों का प्रवेश या स्थापना कर सकती है और नए राज्यों के निर्माण तथा वर्तमान राज्यों के क्षेत्रों, सीमाओं या नामों के परिवर्तन का भी उसे अधिकार है। ये उपबंध स्वतंत्र तथा स्वायत्तशासी राज्यो की धारणा का अन्त कर देते है।

नागरिकता

भारत में इकहरी नागरिकता है। प्रत्येक भारतीय समूचे देश का नागरिक है, पृथक से किसी राज्य का नहीं। भारतीय संविधान ने एक ही नागरिकता का विधान कर देश के लिए एक सी शासन व्यवस्था का निरूपण किया है। संविधान के भाग 2 में दिए गये नागरिकता सम्बन्धी उपबंधों–अनुच्छेद 5 से 11 में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि नागरिकता का विनियमन संघ संसद ही कर सकती है, राज्यों का उसमें कोई हाथ नहीं है।

प्रभुत्व सम्पन्नता

प्रस्तावना के अनुसार भारत पूर्ण रूप से प्रभुत्ता–सम्पन्न राज्य है और कानूनी दृष्टि से उसके ऊपर न तो किसी आन्तरिक शक्ति का प्रतिबंध है और न किसी बाहरी शक्ति का।

आंतरिक क्षेत्र में यद्यपि संघ और राज्यों के बीच शक्तियों का विभाजन किया गया है तथापि आपात स्थिति तथा कुछ और विशिष्ट स्थितियों में संविधान ने संघ सरकार को यह शक्ति दी है कि वह राष्ट्रहित में राज्यों की शक्तियों का अतिक्रमण कर सकता है। प्रस्तावना के अनुसार प्रभुत्ता समूची भारतीय जनता में अथवा भारतीय गणराज्य में निहित है उसके किसी अंगभूत भाग में नही साथ ही भारत बाह्य मामले में भी प्रभुत्व सम्पन्न है, इसकी विदेश नीति अथवा अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों पर कोई अंकुश नहीं होता।

लोकतंत्रात्मक गणराज्य

भारतीय संविधान के दर्शन में लोकतंत्र को जीवनयापन की एक पूरी व्यवस्था के रूप में जीवन के हर समग्र

दर्शन के रूप में स्वीकार किया गया है। लोकतंत्र के राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक पहलू है। राजनीतिक पहलू में राजनीतिक समानता के आदर्श को माना जाता है और राजनीतिक शक्ति पर किसी वर्ग विशेष का एकाधिकार नहीं स्वीकारा जाता। यह समझना भारी भूल होगी कि लोकतंत्र बहुमत का शासन है। इसमें संदेह नहीं कि जनता के प्रतिनिधियों का चुनाव बहुमत के आधार पर होता है, किन्तु एक बार निर्वाचित होने के बाद वे समस्त जनता के प्रतिनिधि हो जाते है तथा समस्त जनता के हित के लिए ही शासन करते है। लोकतंत्र को अल्पसंख्यको की सहमति से बहुमत का शासन भी कहा गया है। सामाजिक आदर्श के रूप में लोकतंत्र मनुष्य के बीच समानता का प्रतिपादन करता है। लोकतंत्र में कोई सुविधा सम्पन्न विशेष वर्ग नहीं हो सकता और जाति, धर्म, भाषा, वर्ण वंश, धन और लिंग के आधार पर व्यक्ति के बीच भेदभाव की दीवारें खड़ी नहीं की जा सकती। लोकतंत्र के आर्थिक पक्ष का अभिप्राय यह है कि समाज की आर्थिक शक्ति का ऐसा समानता युक्त वितरण हो जिससे प्रत्येक व्यक्ति का जीवन सुखी और समृद्ध हो सकें, उसे आत्मविकास के समान अवसर मिल सकें, और साथ ही उसके व्यक्तिगत अधिकार, उसका सम्मान और उसकी स्वतंत्रता भी सुरक्षित रह सके। प्रस्तावना में प्रयुक्त लोकतंत्रात्मक गणराज्य शब्द तथा उसके बाद के शब्द न्याय, स्वतंत्रता, समता, व्यक्ति की गरिमा बंधुता आदि इस बात के सबूत है कि संविधान–निर्माताओं का लक्ष्य देश में राजनीतिक लोकतंत्र के साथ–साथ सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र की भी नींव डालना था।

सार्वभौम वयस्क मताधिकार

संविधान द्वारा वयस्क मताधिकार के सिद्धांत की स्वीकृति का अर्थ है ''लोकतंत्र के सभी निहितार्था की पूर्व स्वीकृति।'' वयस्क मताधिकार को इसलिए स्वीकार किया गया कि सभा का जन साधारण में तथा लोक–शासन की चरम सफलता में दृढ़ विश्वास था। साथ ही उनको इस पर भी पूरा विश्वास था कि वयस्क मताधिकार पर आधारित लोकतंत्रात्मक शासन से जनसाधारण में जागृति आएगी, उसकी भलाई होगी, उसका जीवन स्तर उंचा उठेगा, उसे सुख–सुविधाएं सुलभ होंगी और वह शिष्ट–सुसंस्कृत जीवन व्यतीत कर सकेगा। प्रत्यक्ष निर्वाचन और वयस्क मताधिकार ने भारतीय राजनीति तथा समाज–रचना में कायाकल्प कर दिया है तथा उसे आधुनिकता के पथ पर ला खड़ा किया है।

गणराज्य

व्यापक अर्थ में गणराज्य का अर्थ वह शासन है जिसमें राजकीय शक्ति का प्रयोग एक लक्ष्य को सामने रखकर किया जाता है, ''बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय'' अथवा लोकमंगल के निमित्त। भारत में राज्य का प्रधान कोई आनुवांशिक नरेश नहीं, प्रत्युत निर्वाचित राष्ट्रपति है। राज्य का कोई विशेषाधिकार सम्पन्न वर्ग नहीं है। राज्य के सभी पद बिना किसी भेदभाव के सभी नागरिकों के लिए उन्मुक्त है (अनु.–16), साथ ही गणराज्य में उच्चतम शक्ति सार्वभौम वयस्क मताधिकार से सम्पन्न जन–समुदाय में विहित है (अनु.–325–326)।

न्याय

यह हमारे संविधान का सर्वाधिक बुनियादी और कुद हद तक मौलिक धारणा है। न्याय के बिना समता और स्वतंत्रता के आदर्श निस्सार हो जाते है इसलिए प्रस्तावना में न्याय को स्वतंत्रता और समता से भी ऊपर रखा गया है। न्याय की भावना का मूल स्वर है कि –समाज के विभिन्न वर्गो और व्यक्तियों के हितों का सामंजस्य और उस सबका समान अभ्युदय। 'अधिकतम संख्या का अधिकतम हित' ही नहीं वरन् सबका मानव मात्र का अधिकतम हित–सर्वोदय –यही भारतीय संविधान में न्याय का आदर्श है।

सर्वेजनाः सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामया।

संविधान के चौथे भाग, अनु.–38 में इस आदर्श का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि राज्य का यह कर्त्तव्य होगा कि वह एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था स्थापित करने का प्रयास करें जिसमें सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक–न्याय राष्ट्रीय जीवन की समस्त संस्थाओं को अनुप्राणित करे और लोक–कल्याण की उन्नति का पथ प्रशस्त करे। इस प्रकार संविधान ने न्याय के आदर्श को लोक कल्याण के आदर्श से अभिन्न माना है और न्याय के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक तीनों ही पक्षों पर बल दिया है।

स्वंतत्रता

प्रस्तावना में 'विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता को व्यक्तियों तथा राष्ट्र के आत्मिक उत्कर्ष के लिए आवश्यक मानकर उसका आश्वासन दिया गया है। संविधान के भाग–3 में मूल अधिकारों के अंतर्गत स्वातंत्रय–अधिकारों का विस्तार से प्रतिपादन किया गया है। संविधान के अनु.–19–22 के द्वारा नागरिकों को जो स्वतंत्रता प्रदान की गई है उन्हें सामूहिक रूप से 'स्वातंत्रय अधिकारों की संज्ञा दी गई है। ये स्वतंत्रताऐं उदारवादी लोकतंत्र की स्थापना के लिए आवश्यक है।

धार्मिक स्वतंत्रता और धर्मनिरपेक्षता

संविधान द्वारा प्रदत्त धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकारों का विशेष महत्व है जिसका निरूपण अनु.– 25–28 तक में किया गया है। संविधान के धार्मिक स्वंतत्रता संबंधी उपबंध धर्म–निरपेक्ष अथवा असाम्प्रदायिक राज्य की आधारशिला है किन्तु, धर्म–निरपेक्ष राज्य अधार्मिक या धर्मविरोधी नहीं होता। वह केवल विभिन्न धर्मो के बीच पूरी तरह से तटस्थ होता है, और उसकी किसी धर्म विशेष में आस्था नहीं होती।

वह किसी धर्म विशेष को प्रोत्साहन नहीं देता और किसी भी धर्म के साथ कठोरता नहीं बरतता। वस्तुतः धर्म निरपेक्ष राज्य के अंतर्गत धर्म को नितांत वैयक्तिक मामला समझा जाता है और उसे राजनीति पर हावी नहीं होने दिया जाता।

भारत जैसे बहुधर्मी देश में धर्मनिरपेक्षता का सिद्धांत विशेष महत्व रखता है। धार्मिक अल्पसंख्यको के हित में धर्म–निरपेक्षता का आदर्श ही सबसे बड़ा और कारगर संरक्षण है।

समता

संविधान की प्रस्तावना में 'स्थान और अवसर की समता' प्रदान की गई है। समानता के सिद्धांत का अभिप्राय यह है कि प्रत्येक मनुष्य को अपनी शक्तियों के समुचित विकास करने हेतु समान अवसर सुलभ होना चाहिए। इसी बात को ध्यान में रखते हुए संविधान निर्माताओं ने प्रस्तावना में केवल मात्र 'समता' शब्द नहीं कहा और न ही 'समता–सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक' ही कहा है, बल्कि उन्होने स्पष्टतः 'स्थान और अवसर की समता' पर बल दिया। स्थान और अवसर की समता के कई पहलू है– वैधिक–अर्थात् विधि के समक्ष सभी नागरिकों को समान होना चाहिए। सामाजिक पहलू में स्थान और अवसर की समता का आशय है कि धन, जाति, बिरादरी और वंशादि के आधार पर मनुष्यों के बीच भेद नहीं होना चाहिए। राजनीतिक क्षेत्र में स्थान और अवसर की समता का आशय है कि सभी नागरिकों को–अपराधियों व पागलों को छोड़कर–देश के शासन में समान भाग मिलना चाहिए। लिंग, नस्ल अथवा धन के आधार पर राजनीतिक अधिकारों का निषेध राजनीतिक समता का उल्लंघन है। आर्थिक संदर्भ में समता का अभिप्राय है कि समान योग्यता और समान श्रम के लिए वेतन भी समान हो। चरम रूप से आर्थिक समता का निहितार्थ है कि उत्पादन और वितरण के साधनों पर सम्पूर्ण समाज का नियंत्रण हो और उसका प्रयोग जनसाधारण के कल्याण के लिए किया जाए। संविधान ने प्रस्तावना में नागरिकों को यही स्थान व अवसर की समता प्रदान की है। अनु.– 14–17 का उद्देश्य इस समता के अधिकार को व्यवाहारिक रूप देता है।

बंधुता और राष्ट्रीय एकता

संविधान के आधारभूत सिद्धांतों में बंधुता और राष्ट्रीय एकता दो ऐसे मूल्य है जिन्हें भूलाया नहीं जा सकता। भारत के विभिन्न क्षेत्रों, भाषाओं, जातियों और रीति–रिवाजों के बावजूद एक बुनियादी एकता है, और इस एकता को दृढ़ता प्रदान करना राष्ट्र का सर्वसम्मत लक्ष्य है। संविधान ने सांप्रदायिक निर्वाचनों का और अस्पृश्यता का अंत कर भारतीय समाज के विभिन्न तत्वों को एक–दूसरे के निकट लाने का प्रयास किया है, और एक शक्तिशाली केन्द्र की स्थापना कर देश की एकता पर बल दिया है। सारे देश के लिए कए संविधान, एक ध्वज, एक नागरिकता, एक न्यायपालिका तथा एक ही दीवानी और फौजदारी कानून की व्यवस्था और अखिल भारतीय सेवाओं की स्थापना, समूचे देश को एकता के सूत्र में बांधने तथा राष्ट्रीय बंधुता को सुदृढ़ करने को प्रयास है। संविधान के अनु.– 51

में ''वसुधैव कुटुम्बकम्''की अभिव्यक्ति हुई है। जहां राज्य से कहा गया है कि वे अंतर्राष्ट्रीय शांति और सुरक्षा की उन्नति को, राष्ट्रो के बीच न्याय और सम्मानपूर्ण सम्बन्धों की रक्षा को तथा विवादों को शांतिपूर्ण उपायों से निपटाने को प्रोत्साहन दें। संविधान में प्रतिपादित इस सिद्धांत के अनुरूप ही स्वतंत्र भारत की विदेशनीति विश्व शांति और मंत्री के उदात्त आर्दशों से प्रेरित रही है, और पंचशील अंतर्राष्ट्रीय सहयोग, शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व, अप्रतिबद्धता तथा निर्बद्धता के सूत्रों ने विश्व राजनीति में पारस्पारिक सौहार्द के नित्य–नूतन क्षितिज का उद्घाटन किया है।

वस्तुतः संविधान में जिन उदात्त और चिरंतन तथ्यों का निरूपण हुआ है उनमें किसी को मतभेद नहीं हो सकता और उनकी साधना और सिद्धि के लिए भारत का जन–जन, चाहे उसकी कोई जाति, धर्म, भाषा और पेशा हो एकमत है। प्रश्न है तो इनके कार्यकरण का तथा इन सिद्धांतों को व्यवहार में लाने का। यदि राज्य की कार्यपालिका, विधायिका तथा न्यायपालिका इनका स्मरण रखकर कार्य करे तो संविधान से किसी को शिकायत नहीं हो सकती और आनेवाली पीढ़ियां भी अपने–अपने युग की सामाजिक चेतना के अनुकूल इसमें नये अर्थ व गुण खोज सकेंगी तथा नई प्रेरणा और ताजा स्फूर्ति ग्रहण कर सकती है।

वर्तमान प्ररिप्रेक्ष्य में विश्लेषण

भारत का संविधान लोकतंत्रात्मक है, किन्तु लोकतंत्रात्मक संस्थाओं के सफल कार्यकरण के लिए यह आवश्यक है कि वे जो इसका क्रियान्वयन करे दूसरे के दृष्टिकोण को आदरपूर्वक देखने तथा समझौते और समायोजन के लिए तत्पर हो। कहा जाता है कि किसी देश को वैसी ही सरकार मिलती है जिसका वह अधिकारी होता है। जिन लोगों को चुना जाए यदि वे योग्य, ईमानदार तथा चरित्र और निष्ठा वाले हुए तो वे त्रुटिपूर्ण संविधान को भी सर्वोतम बना देगें और यदि वे इन गुणों से रहित हुऐ तो कोई भी संविधान देश को नहीं बचा सकता। आज भारत को किसी चीज की इतनी आवश्यकता नहीं जितनी की ईमानदार व्यक्तियों की जो अपने सामने देश का हित रखे। हमारे राष्ट्रीय जीवन के विभिन्न अंगों से विघटनकारी प्रवृत्तियों उठ रही है। हमारे यहां कितने ही सामुदायिक, जातिगत, भाषा–संबंधी, प्रांतीय तथा अन्य मतभेद है। अतः आवश्यकता ऐसे लोगों की है, जो चरित्र के पक्के तथा सूक्ष्म–दृष्टि वाले हो, जो छोटे –छोटे समुदायों और क्षेत्रो के हितों के लिए पूरे देश के हितों की बलि न दें और जो विभिन्नताओं से जन्मे पूर्वाग्रहो से ऊपर उठ सके। संविधान ने संसदीय लोकतंत्र की स्थापना की है परन्तु गांधी जी ने एक समग्र क्रांति–सामाजिक, आर्थिक, राजनीति का जो सपना देखा था वह आज अधूरा है। 18 वर्ष के उपर के सभी वयस्को को मताधिकार प्राप्त है किन्तु पहले समाजवाद, पंचवर्षीय योजना, गरीबी हटाओं के नारे तथा बीमा और बैंको का राष्ट्रीयकरण, निजीकरण के नारे तथा आर्थिक उदारीकरण के बावजूद आज भी देश गरीबी, अशिक्षा, भ्रष्टाचार से पीड़ित है। देश के भीतर मनुष्यों द्वारा मनुष्य का शोषण बढ़ा है। गरीब–अमीर के बीच की खाई बढ़ी है, नैतिकता का स्तर गिरा है। घूसखोरी, भाई–भतीजावाद, पद–लोलुपता और निजी स्वार्थ सिद्धि से राजनीतिक जीवन कलुषित हुआ है। विभाजन और अलगाव की भावनाएं कायम है। साम्प्रदायिक कायम है। धर्मनिरपेक्षता की बात करनेवाले राजनीतिक कारणो से अपने निहित स्वार्थो से वंशीभूत अपना उल्लू सीधा करते रहने के लिए साम्प्रदायिक मतभेदों को जीवित रखना चाहते है और एक सुनियोजित, संगठित राष्ट्र को आकार नहीं लेने देते।

देश की राजनीतिक स्वाधीनता से विदेशीयता का प्रभाव कम नहीं हुआ बल्कि बढ़ा है। हम बातें अवश्य हिंदी और अन्य राष्ट्रभाषाओं की करते है किंतु हमारे जीवन में अंग्रेजी और अंग्रेजियत का प्रभाव बढ़ रहा है। हिंदी की दुहाई देने वाले अनेक हिंदी लेखकों और नेताओं ने भी अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा देनेवाले कान्वेंट और पब्लिक स्कूलो में पढ़ाने में ही शान का अनुभव किया है। वस्तुतः आज आर्थिक, मानसिक और सांस्कृतिक दृष्टि से तथा और भी कई तरह से हमारी पराधीनता बढ़ी है।

आज हमारे सम्मुख प्रश्न केवल गरीबी दूर करना नहीं है बल्कि विभिन्न क्षेत्रों में आत्मनिर्भरता पाना, विश्व के समुन्नत और शक्तिशाली राष्ट्रों के बराबर में खड़े होना, तथा भारतीयता को बचाए रखने का भी है। जनसाधारण की समस्याओं से सरोकार रखना भी हमारी प्राथमिकता है। ऐसे में देश को एक कुशल, स्थिर प्रशासन की जो तीव्रतर विकास और प्रगति की तथा न्याय और परिवर्तन की आवश्यकताओं के प्रति जागरूक हो, की जरूरत है। वास्तविक

लोकतंत्र का निर्माण केवल आम लोगों की आर्थिक उन्नति, भूख और निर्धनता से छुटकारे तथा सुख–साधना में समान अवसरों की उपलब्धि की सुदृढ़ नींव पर ही संभव है। अविकसित समाजों में, जहाँ आर्थिक विषमताऐं विकट है, जहाँ लाखों गांवों में पीने का पानी नहीं है, लाखों, करोड़ो लोग भोजन, वस्त्र और आवास जैसी मूलभूत आवश्यकताओं की कमी से जूझ रहे है, वहाँ आर्थिक उदारीकरण, बाजार, अर्थव्यवस्था, बहुराष्ट्रीय कंपनियों का स्वागत, वैश्वीकरण की चर्चा अनुपयुक्त लगती है। श्रीमानों और श्रीहीनों के बीच की खाई जितनी चौड़ी होगी, लोकतंत्र के लिए खतरा भी उतना ही भयंकर होगा। अतः लोकतंत्र की प्राण रक्षा के लिए यह आवश्यक है कि विकास कार्यक्रमों द्वारा अमीरी–गरीबी का भेद कम किया जाए। लोकतंत्र और विकास इन दोनों का सामंजस्य हमारी सबसे बड़ी आवश्यकता और चुनौती तथा इसका सामना करने हेतु हमारा संविधान श्रेष्ठ है।

संविधान को क्रियान्वित करनेवाले राज्य के कार्यांग, विधानांग और न्यायांग को यह स्मरण रखना चाहिए कि संविधान भी एक साधन है, तथा मानव का कल्याण साध्य है। किसी भी देश की राजनीतिक संरचना में नेतृत्व भी महत्वपूर्ण स्थान रखता है, किन्तु अकेला नेतृत्व कुछ नहीं कर सकता। यह दुर्भाग्य है कि हमारे देश में निष्क्रियता, कम से कम काम करने, अपनी जिम्मेदारी दूसरे पर डालने की प्रवृत्ति भयंकर रूप धारण कर चुकी है। अधिकारों का आग्रह सर्वाधिक है और कर्तव्यों की ओर उदासीनता चरम पर है।

निष्कर्ष

आज इसकी सर्वाधिक जरूरत महसूस की जा रही है, 'हम भारत के लोग' जिन्होने संविधान बनाया तथा जिन पर संविधान की रक्षा का दायित्व है वे सभी अपने उतरदायित्व का पूरा अहसास करें। राष्ट्र किसी प्रधानमंत्री मात्र के बनाये नहीं बना करता, साथ ही राष्ट्र को कोई दल या नेता मात्र नहीं चलाता। राष्ट्र की उन्नति तभी संभव है जब देश का प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्तव्यों को समझे।

हरेक के मन में एक उत्साह, एक जोश हो, देश को आगे बढ़ाने का और उसके लिए कठिन से कठिन परिश्रम करने की। सारे देश में एक ऐसा नया वातावरण पैदा किया जाए, जिसमें प्रत्येक भारतवासी को लगे कि वह देश निर्माण के महान कार्य में जुटा हुआ है और उसे अपने प्रयत्नों से देश को आगे बढ़ाना है। यदि हमारे चरित्र गिर जाऐं, देश के प्रति ईमानादरी, निष्ठा न रहे, संकुचित स्वार्थ ही सबकुछ हो जाए तो कोई भी संविधान कुछ नहीं कर सकता।

संदर्भ सूची

1. कश्यप, सुभाष, (1997) *भारत का सांविधानिक विकास और संविधान,* हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।
2. शर्मा, ब्रजकिशोर, (2002) *भारत का संविधान एक परिचय'* नई दिल्ली, प्रेंटिस , हॉल ऑफ इंडिया प्राईवेट लिमिटेड.
3. सिवाच, जे0आर0 (1992) *भारत की राजनीतिक व्यवस्था,* हरियाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ़।
4. नारंग, ए0एस0, (2002) *भारतीय शासन एवं राजनीति,* नई दिल्ली, गीतांजलि पब्लिशिंग हाउस।
5. सईद, एस0एम0 (1997) *भारतीय राजनीतिक व्यवस्था'* लखनऊ सुलभ प्रकाशन।
6. सिंह महेन्द्र प्रसाद एवं शुभेन्दु रंजन राज, (2011) *द इंडियन पॉलिटिकल सिस्टम, पियर्सन एजुकेशन,* इंडिया, नई दिल्ली।
7. सक्सेना रेखा एवं महेन्द्र प्रसाद सिंह, (2011) *इंडियन पॉलिटिक्स : कॉन्सटियिशनल फाउन्डेशनस एवं इंरटिटियूशनल फंक्सनींग*।
8. बक्सी उपेन्द्र एवं भिखू पारिख (संपादित) (1995) *क्राइसिस एंड चेन्ज इन कन्टेम्परी इंडिया,* दिल्ली संज प्रकाशन।

——==00==——